भारतीय ज्ञान परंपरा

संस्कृति, दर्शन, शैक्षिक विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :
डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय ज्ञान परंपरा :

संस्कृति, दर्शन, शिक्षा विचारधाराएँ और नवाचार

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

छवि पब्लिकेशन्स

अजमेर-305001

प्रकाशक :
छवि पब्लिकेशन्स
अजमेर-305001
मो. 9660111549

संस्करण :
प्रथम 2022-2023

ISBN : **978 - 81 - 89435 - 64 - 6**

मूल्य - 300/-

रचना - **भारतीय ज्ञान परम्परा में शिक्षा के समाजशास्त्रीय आधार**

सम्पादक - **डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा**

मुद्रक - **श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर**

27. उन्नीसवीं शताब्दी में शिक्षा का स्वरूप

ओम प्रकाश शर्मा
सहायक आचार्य (शिक्षा विभाग)
हुकुमचन्द नोबेल इंस्टीट्यूट ऑफ साईंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक भारतवषज़ में देशी शिक्षा-पद्धति का प्रमुख स्थान विद्यमान था। पारंपरिक गुरुकुलों, पाठशालाओं तथा मदरसों में शिक्षा का कायज़ सामाजिक परंपराओं एवं धार्मिक मान्यताओं के अनुरूप संचालित होता था। परन्तु शताब्दी के मध्यकाल में, औपनिवेशिक प्रभाव के परिणामस्वरूप, इस देशज प्रणाली का स्थान आधुनिक अंग्रेजी शिक्षा-पद्धति ने ग्रहण करना आरम्भ किया। नवीन एवं प्राचीन के मध्य उत्पन्न संघर्ष में अन्ततः आधुनिक पाश्चात्य शिक्षा के समर्थकों की विजय हुई। ब्रिटिश शासन की दृष्टि में देशी शिक्षा-पद्धति प्रगतिशील राष्ट्र-निर्माण के अनुकूल नहीं थी; अतः उन्होंने उसके उन्मूलन तथा इंग्लैंड की शिक्षा-पद्धति के अनुकरण को ही भारत की प्रगति का आधार माना।

अंग्रेज शासकों की शिक्षा-नीति का मूल उद्देश्य भारतीय समाज को उसकी सांस्कृतिक चेतना एवं आत्मपरक बौद्धिक परंपरा से विच्छिन्न कर मानसिक रूप से पराधीन बनाना था। उनकी नीति इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि— "यदि किसी राष्ट्र को स्थायी रूप से दास बनाकर रखना हो, तो उसकी भाषा, साहित्य और संस्कृति का विनाश कर देना चाहिए।" अतः शिक्षा के क्षेत्र में भी उन्होंने वही उपनिवेशवादी दृष्टिकोण अपनाया।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में देशी शिक्षा-पद्धति की वास्तविक स्थिति के विषय में उपलब्ध जानकारी अत्यंत सीमित थी। ब्रिटिश शासन का विस्तार उस समय भारत के केवल कुछ सीमित क्षेत्रों तक ही था; इसलिए जो सूचनाएँ प्राप्त हुईं, वे मुख्यतः मद्रास, बंगाल और बम्बई प्रान्तों तक ही सीमित रहीं। देशी शिक्षा के स्वरूप का प्रथम व्यवस्थित सर्वेक्षण मद्रास प्रेसीडेंसी के गवर्नर सर टॉमस मुनरो द्वारा सन् 1822 में कराया गया। इस सर्वेक्षण का प्रतिवेदन स्वयं मुनरो ने प्रस्तुत किया था, जो विभिन्न जिलाधीशों से प्राप्त प्रतिवेदनों पर आधारित था।

इस प्रतिवेदन के अनुसार मद्रास प्रेसीडेंसी के अधीन राज्य क्षेत्रों में 12,498 विद्यालय और महाविद्यालय विद्यमान थे। जनसंख्या के अनुपात में औसतन प्रत्येक

1,000 व्यक्तियों पर एक विद्यालय उपलब्ध था। चूँकि स्त्रियाँ उस समय शिक्षा से वंचित थीं, अतः वास्तविक अनुपात प्रत्येक 500 व्यक्तियों पर एक विद्यालय का था। पाँच से दस वर्ष की आयु के लगभग एक-तिहाई बालक शिक्षा प्राप्त करते थे।

पाठ्यक्रम की दृष्टि से विद्यालयों में एकरूपता का अभाव था। विभिन्न विद्यालयों में तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मराठी, अरबी तथा फारसी भाषाओं का शिक्षण किया जाता था। केवल 23 विद्यालयों में संस्कृत और एक विद्यालय में अंग्रेजी की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षकों को अत्यल्प वेतन—प्रायः छः से सात रुपये प्रति माह प्राप्त होता था। परिणामस्वरूप योग्य एवं प्रतिभासंपन्न व्यक्ति शिक्षण कार्य की ओर आकर्षित नहीं होते थे, जिससे शिक्षा की गुणवत्ता पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

भारत में आधुनिक शिक्षा के इतिहास में 1813 का चार्टर अधिनियम एक युगांतरकारी घटना थी। इसी अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सरकार ने ईसाई मिशनरियों को भारत में धर्म-प्रचार एवं शिक्षण कार्य की स्वतंत्रता प्रदान की। परिणामस्वरूप कम्पनी के अधीन प्रदेशों में मिशनरियों का जाल फैल गया। प्रमुख संस्थाएँ थीं— लंदन मिशनरी सोसाइटी, चर्च मिशनरी सोसाइटी, जनरल बैपटिस्ट मिशन, वैसलियन मिशन और स्कॉच मिशनरी सोसाइटी। इनके अतिरिक्त जर्मन और अमरीकी मिशनरियों ने भी भारत में अपने शिक्षा केंद्र स्थापित किए।

चार्टर अधिनियम के पश्चात् ईस्ट इंडिया कम्पनी ने शिक्षा के क्षेत्र में राजकीय उत्तरदायित्व स्वीकार करते हुए प्रत्येक वर्ष एक लाख रुपये शिक्षा पर व्यय करने का प्रावधान किया। कम्पनी का वास्तविक उद्देश्य भारतीयों का ऐसा वर्ग तैयार करना था जो रक्त और रंग से भारतीय, परन्तु विचार, रुचि और बुद्धि से अंग्रेज हो। मिशनरी, कम्पनी के युवा अधिकारी और राजा राममोहन राय जैसे प्रगतिशील भारतीय इस विचारधारा के समर्थक थे। राजा राममोहन राय ने 1823 में गवर्नर-जनरल को प्रस्तुत स्मरणपत्र में आग्रह किया कि शिक्षा में गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायनशास्त्र, शरीररचना और अन्य प्रायोगिक विज्ञानों को सम्मिलित किया जाए। उनके इस दृष्टिकोण ने भारत में पाश्चात्य वैज्ञानिक शिक्षा के प्रसार की दिशा में निर्णायक भूमिका निभाई।

1833 से पूर्व मिशनरी शिक्षा मुख्यतः देशी भाषाओं में प्रारम्भिक विद्यालयों तक सीमित थी, परंतु 1833-1853 के बीच उनकी नीति में परिवतज़्न आया। अब उन्होंने अंग्रेजी माध्यम के माध्यमिक विद्यालयों और महाविद्यालयों की स्थापना पर बल दिया। इस दिशा में ऐलेग्जेंडर डफ ने अग्रणी भूमिका निभाई, जिन्होंने 1830 में कलकत्ता में एक अंग्रेजी विद्यालय स्थापित किया। उनके प्रयासों से प्रेरित होकर अनेक मिशनरी संस्थाओं ने अंग्रेजी विद्यालय आरम्भ किए। 1854 तक भारत की अधिकांश शैक्षणिक संस्थाएँ मिशनरियों के नियंत्रण में थीं।

राजा राममोहन राय, यद्यपि संस्कृत के विद्वान थे, फिर भी उन्होंने सरकार से आग्रह किया कि प्राच्य शिक्षा के स्थान पर अंग्रेज़ी माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान और साहित्य की शिक्षा दी जाए। उन्होंने भारतीय भाषाओं के विकास का समर्थन किया और स्वयं भूगोल, खगोलशास्त्र, ज्यामिति आदि विषयों पर बंगला में ग्रंथों की रचना की। वे पाश्चात्य संस्कृति को थोपने के नहीं, बल्कि अंग्रेजी ज्ञान के माध्यम से भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान के पक्षधर थे। उन्होंने स्त्री-शिक्षा का समर्थन किया और 1833 में इंग्लैंड की हाउस ऑफ कॉमन्स समिति के समक्ष अपने प्रगतिशील विचार रखे।

थॉमस बैबिंगटन मैकाले ने भारतीय संस्कृति और परंपरागत ज्ञान को गहराई से नकारते हुए उसे अंधविश्वासों का भंडार मात्र कहा। उन्होंने 1813 के चार्टर अधिनियम की शिक्षा-संबंधी धारा में प्रयुक्त 'साहित्य' शब्द की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया कि इसका अभिप्राय अंग्रेजी साहित्य से है, न कि संस्कृत, अरबी या फ़ारसी साहित्य से। उनके अनुसार 'भारतीय विद्वान' वह व्यक्ति है जो लॉक के दर्शन और मिल्टन की कविताओं से परिचित हो।

मैकाले ने देशी भाषाओं को अविकसित और अज्ञानपूर्ण बताते हुए लिखा कि उनमें साहित्यिक या वैज्ञानिक ज्ञान का अभाव है, इसलिए उनमें किसी महत्त्वपूर्ण ग्रंथ का अनुवाद भी संभव नहीं। उन्होंने कहा कि "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अलमारी भारत और अरब के समस्त साहित्य के बराबर मूल्यवान है।" यद्यपि मैकाले को न संस्कृत का ज्ञान था, न अरबी का, तथापि उन्होंने भारतीय ग्रंथों को निरर्थक सिद्ध करने में कोई संकोच नहीं किया।

उन्होंने तर्क दिया कि जब सरकार के पास 'शुद्ध दर्शन और वास्तविक इतिहास' पढ़ाने की क्षमता है, तब उसे ऐसे विषयों पर व्यय नहीं करना चाहिए जिनमें 'तीस फुट लंबे राजाओं, तीस हजार वर्ष के राज्यकालों' और 'शीरे-मक्खन के समुद्रों' का उल्लेख हो। इस प्रकार मैकाले ने अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य ज्ञान को भारतीय शिक्षा की रीढ़ घोषित कर भारतीय सांस्कृतिक विरासत का उपहास किया।

मैकाले ने प्राच्य शिक्षालयों को गैर-आवश्यक मानते हुए सुझाव दिया कि हिंदू और मुस्लिम कानूनों को अंग्रेजी में संहिताबद्ध किया जाए और मौजूदा संस्थाओं का उपयोग अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार के लिए किया जाए। उन्होंने अंग्रेजी भाषा को वैश्विक ज्ञान-भंडार तक पहुँच का मुख्य साधन बताया।

एल्फिंस्टन ने भी अंग्रेजी शिक्षा को राजनीतिक रूप से आवश्यक माना, क्योंकि इसे प्राप्त भारतीय ब्रिटिश शासन के समर्थक बनेंगे। इस विचार को 1835 में गवर्नर जनरल लार्ड बेंटिक ने स्वीकार किया और सरकार ने घोषणा की कि शिक्षा पर उपलब्ध धन का पूरा उपयोग अंग्रेजी माध्यम से साहित्य और विज्ञान की शिक्षा देने में

किया जाएगा।

मैकाले और प्राच्यवादियों के बीच शिक्षा के स्वरूप को लेकर गहन मतभेद थे। लाडज़ बेंटिक ने मैकाले के विवरणपत्र पर प्राच्यवाद के नेता प्रिंसेप से राय मांगी, जिन्होंने प्राच्य साहित्य और शिक्षा के जीर्णोद्धार के पक्ष में ठोस तर्क दिए। बावजूद इसके, विलियम बेंटिक ने मैकाले के प्रस्तावों को स्वीकार किया और 7 मार्च, 1835 को शिक्षा नीति का अधिनियम जारी किया। इसके मुख्य तत्व थे—

1. ब्रिटिश सरकार का उद्देश्य भारतीय निवासियों में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रचार करना; शिक्षा पर उपलब्ध धनराशि केवल अंग्रेजी शिक्षा पर खर्च हो।
2. प्राच्य शिक्षालयों का उन्मूलन न होगा, वर्तमान शिक्षकों और विद्यार्थियों को वेतन/वृत्तियाँ मिलती रहेंगी, लेकिन नए प्रवेशियों को वृत्ति नहीं दी जाएगी; नए प्रोफेसरों की नियुक्ति सरकार के निर्णय से।
3. प्राच्य कृतियों के मुद्रण-प्रकाशन पर भविष्य में निधि का प्रयोग नहीं किया जाएगा।
4. शेष राशि का उपयोग मूल निवासियों को अंग्रेजी साहित्य और विज्ञान की शिक्षा देने में किया जाएगा।

1847 में हाऊस ऑफ कॉमन्स में मैकाले ने कहा कि जनसाधारण को शिक्षा देना राज्य का कर्तव्य है और इसे ब्रिटिश शासन की उच्च प्राथमिकता माना जाना चाहिए। उन्होंने 1833 में भी जोर दिया कि भारत की जनता को अज्ञानी रखना केवल उसे उपनिवेशित बनाए रखने का साधन नहीं होना चाहिए, बल्कि अंग्रेजी शिक्षा के माध्यम से उन्हें ब्रिटिश सभ्यता और ज्ञान तक पहुँचाना आवश्यक है। उनके प्रयासों के कारण भारत सरकार ने अंग्रेजी भाषा में शिक्षा-नीति लागू करने का निर्णय लिया।

1854 से पूर्व भारत में उच्च शिक्षा का विकास धीमा रहा, लेकिन विभिन्न प्रांतों में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार की नींव रखी गई। बंगाल में 1835 में 20 विद्यालय थे, जो 1837 में बढ़कर 48 और 1854 तक 47 स्कूल, 5 कॉलेज, 1 मेडिकल और 3 प्राच्य कॉलेज तक पहुँच गए। कलकत्ता हिंदू कॉलेज में इंजीनियरिंग (1844) और मेडिकल कॉलेज (1835) की शिक्षा आरंभ हुई, तथा 1856 में इंजीनियरिंग कॉलेज स्थापित हुआ।

बंबई में 1840 में शिक्षा बोर्ड का गठन हुआ, 1851 में पूना कॉलेज की स्थापना हुई और 1854 तक 216 देशी विद्यालय तथा ग्रांट मेडिकल कॉलेज खुल चुके थे। मद्रास में 1841 में हाई स्कूल और 1852 में कॉलेज खोले गए। पंजाब, आगरा, बरेली, बनारस और रुड़की में भी क्रमशः अंग्रेजी स्कूल और कॉलेज स्थापित किए गए।

इस प्रकार, 1830–1854 के मध्य अंग्रेजी माध्यम के स्कूल और कॉलेजों के निर्माण से आधुनिक उच्च शिक्षा का प्रारंभिक आधार तैयार हुआ।

1854 से पूर्व स्त्री–शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। लाडज़ बेंटिक ने सती प्रथा के निषेध और महिलाओं की दशा सुधारने का प्रयास किया, जबकि लॉर्ड डलहौजी और वुड ने इसके समर्थन में प्रस्ताव और घोषणा–पत्र पेश किए। फिर भी, इस अवधि में बहुत कम महिलाएँ शिक्षित हो सकीं।

भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रथम चरण 1854 में वुड्स डिस्पैच के साथ समाप्त हुआ। इसे भारतीय शिक्षा में मैग्नाकार्टा माना जाता है क्योंकि इसने सरकार के लिए उच्चस्तरीय कार्य निर्धारित किए। डिस्पैच ने शिक्षा के तीन उद्देश्य निधाज़रित किए—

1. पाश्चात्य संस्कृति का प्रसार,
2. जन प्रशासन के लिए प्रशिक्षित जनसेवक तैयार करना,
3. जनता को राज्य के प्रति कतज़्व्यशील बनाना।

सरकार के हिन्दुस्तानी आलोचकों ने इसका कार्यान्वयन अपर्याप्त बताया। इसके मूल्यांकन के लिए डब्ल्यू. हंटर की अध्यक्षता में 1882 का शिक्षा आयोग बनाया गया। आयोग ने भारत के विभिन्न क्षेत्रों का दौरा कर सुझाव दिए। हंटर आयोग का ध्यान प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा तक सीमित था और इसे स्त्री–शिक्षा के सुधार और प्राथमिक स्तर पर शिक्षा के विस्तार की समीक्षा करने के लिए नियुक्त किया गया।

1854 का वुड्स डिस्पैच भारत में आधुनिक शिक्षा की सुदृढ़ और व्यवस्थित नींव स्थापित करने वाला दस्तावेज था। इसका उद्देश्य पाश्चात्य विचारधारा के आधार पर भारतीय शिक्षा की नई व्यवस्था करना था। डिस्पैच के मुख्य निष्कर्ष थे—

1. शिक्षा में विज्ञान और दर्शन की प्रणाली अपनाई जाए, जो पूर्व की त्रुटिपूर्ण विद्वता से मुक्त हो।
2. यूरोपीय ज्ञान भारतीय मेधा को उत्तेजित और विकसित करेगा।
3. नई शिक्षा का उद्देश्य कला, विज्ञान, दर्शन और साहित्य की व्यापक समझ प्रदान करना है।
4. शिक्षा से नैतिक चरित्र और लोकसेवा में दक्षता बढ़ेगी।
5. सरकार शिक्षा के माध्यम से प्रशिक्षित लोकसेवक तैयार करेगी।
6. यूरोपीय ज्ञान के अध्ययन से नागरिक श्रम, पूंजी और संसाधनों के विकास में सक्षम होंगे और इंग्लैंड के साथ प्रतिस्पर्धा कर सकेंगे।
7. शिक्षा के माध्यम से भारत में आर्थिक उत्पादन और वाणिज्य का विकास संभव होगा।

इन बिंदुओं के माध्यम से वुड्स डिस्पैच ने भारत में अंग्रेजी शिक्षा का सिद्धान्त, उद्देश्य और सामाजिक-आर्थिक भूमिका स्पष्ट की, जो आधुनिक भारतीय शिक्षा की नींव बनी।

19वीं और 20वीं शताब्दी में पाश्चात्य विचारधारा पर आधारित शिक्षा प्रचलित रही। यह नई विचारधारा उन शिक्षण संस्थाओं में संस्थापित हुई, जिन्होंने आधुनिक शिक्षा के मूल सिद्धांतों और प्रणाली का पालन किया। ये संस्थाएँ उस समय के अध्ययन और समाज में शिक्षा के प्रभाव को समझने के लिए महत्वपूर्ण हैं।

1855 से 1921 तक विभिन्न प्रकार की शिक्षण संस्थाओं और छात्रों में तीव्र वृद्धि हुईः

1. **प्राथमिक विद्यालय** : 1855 में 1,202 संस्थान थे, जो 1921 में बढ़कर 1,55,617 हो गए। विकास के संकेतक 100 से बढ़कर 12,946.5 तक पहुँचा।
2. **माध्यमिक विद्यालय** : 1855 में 169 संस्थान थे, जो 1921 में 7,530 हो गए। प्रति हजार छात्रों में वृद्धि 90.3 से 6,109.8 तक हुई।
3. **कला महाविद्यालय** : 1855 में 15 महाविद्यालय थे, जो 1921 में 165 हो गए। विकास के संकेतक 100 से बढ़कर 1,375.8 तक पहुँचा।

इस परिमाणात्मक डेटा से स्पष्ट होता है कि नवीन शिक्षण संस्थाओं और छात्रों की संख्या में तीव्र वृद्धि हुई, जिससे पाश्चात्य शिक्षा का प्रभाव और उसका प्रसार भारत में व्यापक रूप से स्थापित हुआ।

वुड्स डिस्पैच ने भारत में पाश्चात्य प्रकार की शिक्षा की ऐसी व्यवस्था प्रस्तावित की, जिसमें साफ उद्देश्यों और लक्ष्य निर्धारित थे और इसे प्रशासनिक ढाँचे के माध्यम से लागू किया गया। प्रमुख उद्देश्य था सुप्रशिक्षित लोकसेवकों की निरंतर आपूर्ति, जिन पर सरकार भरोसे के साथ कार्यालय सौंप सके। लार्ड हार्डिंग के अनुसार, अंग्रेजी विद्यालय से उत्तीर्ण छात्रों को सरकारी नियुक्तियों में प्राथमिकता दी जाएगी।

भारत के राज्य इस शिक्षण प्रणाली को पाश्चात्य आदर्शों और रिवाजों के अनुरूप लागू करने के पक्ष में थे। हालांकि, 1854 के डिस्पैच और 1882-83 के भारतीय शिक्षा आयोग ने देशज शिक्षा व्यवस्था के सुधार और प्रोत्साहन पर जोर दिया, ब्रिटिश अधिकारियों ने इसे उपेक्षित किया और कई देशज विद्यालयों को क्षय होने दिया। यह उपेक्षा 1901-02 तक धीरे-धीरे समाप्त हुई।

1854 के वुड्स डिस्पैच ने समूह शिक्षा और आधुनिक भारतीय भाषाओं में शिक्षा के विस्तार का प्रस्ताव रखा, लेकिन इसका कार्यान्वयन सीमित रहा। 1882 में केवल 1.2 प्रतिशत जनसंख्या को प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त थी और 1901 में अधिकांश गाँवों में प्राथमिक विद्यालय नहीं थे। साक्षरता दर 1901 में 5.3 प्रतिशत थी, जो 1921

में 7.3 प्रतिशत तक बढ़ी। राज्य ने विशेष रूप से लड़कियों, हरिजन, आदिवासी और कमजोर वर्गों के लिए सीमित लेकिन योजनाबद्ध प्रयास किए।

डिस्पैच ने भविष्य की शिक्षा को सरकारी संस्थाओं से निजी प्रायोजित संस्थानों द्वारा संचालित करने की दिशा में देखा। हंटर आयोग के सुझावों के बीस वषोज़ं में ही छह अंग्रेज़ी–प्रशासित प्रांतों में उच्च शिक्षा में अभूतपूर्व वृद्धि हुई। उदाहरण के लिए:

* उच्च शिक्षा पाने वाले छात्र: 5,403 (1881–82) – 23,009 (1901–02)
* माध्यमिक शिक्षा प्राप्त छात्र: 2,14,077 – 5,90,129
* माध्यमिक स्कूल: 3,916 – 5,124
* व्यावसायिक/प्राविधिक कॉलेज: 72–191
* सरकारी सहायता प्राप्त महाविद्यालय: 11 – 53
* इन महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र: 716 – 5,803

इस काल में निजी भारतीय प्रबंधकों की संस्थाएँ मिशनरी स्कूलों की तुलना में अधिक थीं। प्राथमिक शिक्षा पर सरकारी खर्च में मामूली वृद्धि हुई (16.77 लाख – 16.92 लाख रुपये), और शिक्षा के सबसे अधिक लाभ मध्य वर्ग तथा कुछ संपन्न वर्ग को मिला। इसके अलावा व्यावसायिक शिक्षा और पिछड़े वर्गों, जैसे मुसलमान, हरिजन, महिलाएँ और आदिवासी की शिक्षा में भी सुधार हुआ।

वुड्स डिस्पैच ने अंग्रेजी को शिक्षा की मुख्य भाषा बनाने का पक्ष लिया, लेकिन आधुनिक भारतीय भाषाओं के अध्ययन को पूरी तरह नजरअंदाज नहीं किया। डिस्पैच के लेखक यह मानते थे कि किसी भी सामान्य शिक्षा व्यवस्था में देशज भाषाओं का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि विकसित यूरोपीय ज्ञान को इन्हीं भाषाओं के माध्यम से भी व्यक्त किया जा सकता है।

1902 के भारतीय विश्वविद्यालय आयोग ने पाठ्यक्रमों का विश्लेषण किया, जिससे स्पष्ट हुआ कि विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में आधुनिक भारतीय भाषाओं का विकास पर्याप्त रूप से नहीं हुआ। नूरउल्लाह और नाइक ने निष्कर्ष निकाला कि उस समय के शिक्षित नए बुद्धिजीवी वर्ग ने इन भाषाओं को उपेक्षित किया। उदाहरणस्वरूप, ग्रांट मेडिकल कॉलेज, मुंबई के कुछ प्रतिष्ठित चिकित्सकों ने मराठी में मेडिकल विषयों की पुस्तकें लिखीं, जो इस उपेक्षा को दर्शाता है।

इस काल में माध्यमिक और उच्च शिक्षा मुख्यत: अंग्रेजी माध्यम से प्रदान की जाती थी, जिससे आधुनिक भारतीय भाषाओं का अध्ययन और विकास कमजोर पड़ा। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन और आर्य समाज ने भारतीय भाषाओं की उपेक्षा और उनके विनाशकारी स्थिति के विरोध में सक्रिय भूमिका निभाई।

श्रेष्ठ शिक्षा व्यवस्था की प्रमुख विशेषता थी कि यह सर्वसाधारण बच्चों के

लिए अनिवार्य और सार्वभौमिक शिक्षा प्रदान करे, जिससे समूह शिक्षा का तीव्र विकास संभव हो। भारत में अनिवार्य शिक्षा पर चचाज़ 19वीं शताब्दी में प्रारम्भ हुई। 1838 में विलियम एडम ने प्रत्येक गाँव में अनिवार्य विद्यालय की आवश्यकता बताई। 1858 में टी.सी. होप ने बंबई प्रांत में इसे लागू करने का प्रस्ताव रखा। 1882 से पहले कई शिक्षाविद् और अधिकारियों ने अनिवार्य उपस्थिति और पुनर्निर्देशन का सुझाव दिया, जिनमें राव फूले (पुणे), डॉ. डी. इरामाओ (लाहौर), जे. सिमे (लाहौर), अमीर हुसैन (बंगाल) और अन्य शामिल थे। 1884 में श्री शास्त्री (गुजरात) ने भी जिला समिति को अनिवायज़ प्राथमिक शिक्षा की सिफारिश की।

19वीं शताब्दी की शिक्षा नीति और पाठ्यक्रम औपनिवेशिक राजनीतिक उद्देश्यों से प्रभावित थे। शिक्षा का उद्देश्य एक ऐसा नया वर्ग तैयार करना था जो ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठावान हो। इसके लिए ईसाई मिशनरी संस्थाओं और पाश्चात्य शिक्षा को व्यापक रूप से स्थापित किया गया। पाठ्यक्रम में पाश्चात्य साहित्य और विज्ञान को प्रमुख स्थान दिया गया और अंग्रेजी भाषा को शिक्षण का माध्यम बनाया गया, साथ ही ईसाई धर्म का प्रसार भी सुनिश्चित किया गया।

संपूर्ण 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शिक्षा नीति का लाभ मुख्यतः समाज के संभ्रांत और विकसित वर्ग तक सीमित रहा। पाश्चात्य व्यवस्था ने समाज को वर्गों में विभाजित रखा, जिसमें शिक्षित युवा अल्प प्रतिशत में थे, जबकि विशाल बहुसंख्यक अज्ञानी और अशिक्षित रहा। ब्रिटिश प्रशासन ने फिल्टरेशन सिद्धान्त अपनाया, जिसके अनुसार केवल उच्च वर्ग से संबंध रखने वाले युवाओं को शिक्षा दी जाए, यह अपेक्षा करते हुए कि वे बाद में जनसाधारण को शिक्षित करेंगे, पर यह सिद्धान्त प्रभावी नहीं रहा। परिणामस्वरूप कुछ अंग्रेजी शिक्षित बाबू अपने अज्ञान भाइयों को हेय दृष्टि से देखने लगे और जनसाधारण को अशिक्षित तथा पिछड़ा रखा गया।

ब्रिटिश शिक्षा व्यवस्था धर्मनिरपेक्ष थी, और धार्मिक शिक्षा को प्रोत्साहन नहीं मिला। हंटर शिक्षा आयोग (1882) द्वारा प्रस्तावित तटस्थता नीति अप्रत्यक्ष रूप से ईसाई मिशनरियों के पक्ष में रही। विद्यालय और महाविद्यालयों में भारतीय युवाओं को धर्म, नीति और आध्यात्मिक मूल्यों से रहित शिक्षा दी गई। इसके परिणामस्वरूप युवा नास्तिक बने, चरित्र निर्माण पर ध्यान नहीं दिया गया और पाश्चात्य शिक्षा ने भारतीयों को अंग्रेजी जीवन शैली और आचरण अपनाने के लिए प्रेरित किया।

शिक्षा का उद्देश्य अब राष्ट्रीय जागरूकता, चरित्र विकास या सामाजिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि केवल सरकारी कार्यालयों और बाबू पदों के लिए अधीनस्थ कर्मचारी तैयार करना बन गया। इससे राष्ट्रीय एकीकरण कमजोर हुआ, साम्प्रदायिकता बढ़ी और भारतीय समाज का एकीकृत विकास बाधित हुआ।

निष्कर्षत: 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश शिक्षा नीति का उद्देश्य अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य ज्ञान का प्रसार था, जिससे प्रशासनिक पदों के लिए निष्ठावान वर्ग तैयार किया जा सके। वुड्स डिस्पैच (1854) ने अंग्रेजी माध्यम और पाश्चात्य साहित्य, विज्ञान, कला व दर्शन को प्राथमिकता दी।

इस नीति का लाभ मुख्यत: संभ्रांत वर्ग तक सीमित रहा, अधिकांश जनसंख्या अशिक्षित रही। शिक्षा धर्मनिरपेक्ष और आध्यात्मिक मूल्यों से रहित थी, जिससे भारतीय युवा पाश्चात्य जीवन शैली अपनाने लगे और राष्ट्रीय चेतना कमजोर हुई। स्त्री-शिक्षा और भारतीय भाषाओं का विकास अपेक्षित रूप से नहीं हुआ।

अत: कहा जा सकता है कि ब्रिटिश शिक्षा ने आधुनिक ज्ञान और अंग्रेजी भाषा तो फैलाया, लेकिन सार्वभौमिक शिक्षा, राष्ट्रीय चरित्र निर्माण और सामाजिक समानता में विफल रही।

❑❑❑